International Journal of Applied Research 2021; 7(3): 303-305

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(3): 303-305
www.allresearchjournal.com
Received: 14-01-2021
Accepted: 19-02-2021

डॉ. कुलवंत सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुरु नानक कॉलज, बुढलाडा, मानसा, पंजाब, भारत

Corresponding Author:
डॉ. कुलवंत सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुरु नानक कॉलज, बुढलाडा, मानसा, पंजाब, भारत

'जंगल जहां शूरू होता है' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ के विविधः आयाम

डॉ. कुलवंत सिंह

साहित्य के क्षेत्र में 'संजीव' कोई पुराना नाम नहीं है बल्कि साहित्य के माध्यम से वर्तमान भारतीय समाज, लोक एवं उनके जीवन की वास्तविकता से परिचित करवाने वाले वर्तमान हिन्दी लेखन के सशक्त हस्ताक्षर का नाम है 'संजीव'। कहानीकार तथा उपन्यासकार के दोनों रूपों में लेखकीय–प्रतिबद्वता को ईमानदारी से निर्वहन करने को ही ये सदा प्रयासरत नजर आते हैं। अपनी रचनाओं में नवीन एवं मौलिक सामाजिक और लगभग अछूते विषयों को अभिव्यक्ति देने में अक्षरतः सफल रहे हैं। उत्तर आधुनिक तथा उत्तर सरचनावादी चमत्कारित शैलियों के मोहवश कभी वर्तमान समय या समाज को को विस्मृत करते नहीं दिखते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में आधुनिक भरतीय समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दलित, जनजातिए , आंचलिक तथा लोकजीवन तक की तस्वीर स्पष्ट देखी जा सकती है।

1935 ई. में एम. फास्टर की अध्यक्षता में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोशिएशन' नाम की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन हुआ। इसी के परिणाम स्वरूप 1936 में रजिया सज्जाद जहीर और डॉ. मुल्कराज आनन्द के प्रयत्नों से भारत में इसे स्थापित करने हेतु प्रेमचन्द के सभापतित्व में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की गई जो रचना और आलोचना के क्षेत्र में नया दृष्टिकोण लेकर आया। जिसमें सामाजिक–यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य माना जाता है। यथार्थ के इस नवीन स्वरूप ने साहित्यिक सौन्दर्य को नई दृष्टि से देखा। वर्तमान जन–जीवन में ही सौन्दर्य के दर्शन किए गए। उसके अनुसार नए समाज में पलने वाला और उसके साथ चलने वाला लेखक वर्तमान में ही सौन्दर्य देखेगा। वह संघर्षों से भागकर अतीत या कल्पना के निष्क्रियता में मुंह नहीं छिपाएगा। प्रसिद्व मार्क्सवादी दार्शनिक एन.जी. चारनीवस्की के शब्दों में "'मनुष्य को जीवन सब से प्यारा है' इस लिए सौन्दर्य की यह परिभाषा अत्यंत संतोषजनक मालूम पड़ती है–'सौन्दर्य जीवन है'।"[1] परन्तु आगे चलकर इस 'सामाजिक यथार्थ' में भी भ्रांतिया पैदा हो गई। इसके नाम पर पतनोन्मुख विकृतियों को ही रचनाओं का विषय और सामाजिक यथार्थ माना जाने लगा। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के शब्दों में "यहा पर यह स्वीकार करना भी उपयुक्त होगा कि हिन्दी के पिछले बीस–पच्चीस वर्षो के रचनात्मक लेखन में कुछ ऐसी प्रवृतियां भी सामने आई हैं जिनसे यथार्थ चित्रण को धक्का लगा है।"[2]

प्रेमचन्द ने गोदान के माध्यम से यथार्थ के जिस रूप की नींव डाली उसे नागार्जुन, रेणु, यशपाल, श्री लाल शुकल, जगदीश चन्द्र जैसे कथाकारों ने आगे बढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रेमचन्द के शब्दों में "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य के सार हो, सृजना की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का सार हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं।"[3] इस कसौटी पर प्रेमचन्द की श्रेणी के लेखकों के पश्चात वर्तमान के उल्लेखनीय साहित्यकारों में 'संजीव' महत्वपूर्ण कथाकार हैं। जिनका रचना–साहित्य निश्चय ही हर ऐसी कसौटी पर खरा उतरने में सक्षम होगा जिसमें सामाजिक–प्रतिबद्वता के उच्च चिंतन का भाव समाहित हो।

सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का उदाहरण है 'संजीव' का कुछ समय पहले प्रकाशित उपन्यास 'जंगल जहां शुरू होता है'। जिसमें वर्तमान भारतीय समाज के यथार्थ की तहे उधेड़कर सामने लाने का सफलतम प्रयास है। आज एक तरफ विश्व मंच पर भारत की छवि लोकतान्त्रिक प्रस्तुत की जा रही है, जहां सभी को समान अवसर, अधिकारों की उपलब्धता की बात की जा रही है। वहीं गरीबी, शोषण, असमानता, भुखमरी, नई सामंती व्यवस्था के अत्याचार, दमन तथा अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, हत्यांए, बलात्कार जैसे दाग आज की सामाजिक अवस्था के पर्याय हैं।'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास लेखक की तत्कालीन समाज पर पकड़ तथा उस पर गहन–शोध के परिणाम की जीवंत उदाहरण बन पाया है।

जनतन्त्र के नाम जो जंगलतन्त्र देश में फैला है उसकी अक्षरतः अभिव्यक्ति 'जंगल जहां शुरू होता है' में प्रस्तुत हुई है। बिहार का पश्चिमी चम्पारन क्षेत्र जहां अपराध पहाड़ की तरह
नंगा खड़ा है, वहां की नदियों के साथ बह रहा है, इतिहास के रन्ध्रों से हवा में धुल रहा और भूगोल की भूल–भूलैया में डोल रहा है। गंडक और नारायणी नदी के तिलिस्मी कछारों वाला यही रेता प्रदेश उपन्यास की कथा भूमि का आधार है। जहां लोक तन्त्र के नाम पर जन, समाज, राजनीति, प्रशासन, जाति–धर्म इत्यादि सब में झांकता लहराता भरा–पूरा जंगल। निश्चय ही यह विषम परिस्थितियों की उपज है परन्तु वर्तमान राजनीति ने इसे इस प्रकार पोषित किया है कि यह पटना, लखनऊ, दिल्ली सहित देश की सभी दिशाओं में पसर गया है।

डी. एस. पी. कुमार उपन्यास में केंद्रीय–पात्र तथा पूरी कथा के संयोजक हैं। पश्चिमी चम्पारन के क्षेत्र से डाकू समस्या उन्मूलन अभियान ऑपरेशन ब्लैक पाएथन के लिए डी. एस. पी. कुमार को इस क्षेत्र में नियुक्त किया जाता है। वह निष्ठा एवं ईमानदारी से इसे अंजाम देने को है परन्तु धीरे–धीरे एक के बाद एक उसके सामने जो नथ्य आते है उनसे पता चलता है कि इस समस्या के मूल क्या कारण है। आम आदमी डाकू या अपराधी नहीं बनना चाहता किन्तु मौजुदा सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के चलते उसे इस दलदल में धसान पड़ता है। पुरानी सामंती व्यावस्था का आधुनिक रूप, भूमि सुधार न होना, ढीला एवं मिलीभुगत का प्रशासन, राजनीतिक शरण, बेरोजगारी, धर्म व जाति व्यवस्था, क्षेत्रीयता की मानसिकता सबके सब अपराध के फेलते जंगल के कारक है। कुमार को लगने लगता है कि नोनिया, परेमा, बिन्दा, परशुराम और पुत्तन जैसे दुर्दांत डाकू न्याय के जिस पलड़े में खड़े है, उसी में सुन्नर पांडे, चन्द्रदीप, लल्लन प्रसाद, जगधारी, मंत्री दुबे जी जैसे सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित लोग भी खड़े हैं। वह दिली कोशिश करता है कि यह जंगल किसी अन्य में न उगने पाए। शोषण, अत्याचार, दमन और भाभी के बलात्कार को सह चुका काली न चाह कर भी डाकू बनने को विवश हो जाता है। कुमार विवशता से किनारे खड़ा देखता रह जाता है।

इस जंगल के पनपने के पीछे यथार्थ के रूप में राजनीतिक अपराधीकरण सांठगांठ तथा प्रश्रय भी प्रमुख है। ऐसी राजनीति के चलते जिन अपराधियों को पकड़ने के लिए ईनाम घोषित किए जाते हैं वे ही इस का लाभ उठा मंत्री बन जाते हैं। उस समय कुमार जैसे प्रशासनिक अधिकारी के आत्म विश्वास एवं हताशा के विषय में नहीं सोचा विचारा जाता, जो कल तक उन्हें पकड़ने के लिए दिन–रात एक किए था। परशुराम जैसे ईनामी डाकू के चुनाव जीत मंत्री बन जाने पर डी.एस.पी. कुमार अन्दर से टूट जाता है। उसे लगता है कि जैसे सारा बल खो गया हो, जबकि काली जैसे मेहनती और ईमानदार लोगों को अपराध की राह पर चलने को मजबूर होना पड़ता है। लखराव पूजन पर डाकू रामजनत नोनियां का कहना–"अपना काम में लाज काहे की? अरे भईया, दिल्ली से हियांतक जे कुरसी पर बैठा है सभे डाकू हैं। सब बंद कर देई, हम भी कर देअल।"[4] यही वर्तमान राजनीति का चरित्र बनता जा रहा है। जातिए, क्षेत्रीयता, धार्मिकता के नाम पर समझौता करने वाली इस राजनीति से और किस चरित्र की उम्मीद की जा सकती है? जहां चुनाव जीतने के लिए डाकूओं, अपराधियों जैसे असामाजिक तत्वों का सहारा ही नहीं बल्कि बढ़ावा देकर चुनाव जीतना ही एकमात्र लक्ष्य हो तो निश्चय ही उस समाज में जंगल ही फेलेगा।

किसी भी समाज के निर्माण और स्वरूप निर्धारण को अर्थ मुख्यतः प्रभावित करता हैं। आर्थिक संसाधनों और अवसरों की पर्याप्तता के बावजूद भारत का दुर्भाग्य ही है कि बिहार जैसे राज्य अब भी गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं से अपना दामन नहीं छुड़ा सके है। संजीव ने 'जंगल जहां शुरू होता है' में इन समस्याओं को परत–दर–परत खोलकर सामने रखने की कोशिश की हैं। डी.एस.पी. कुमार सामंती व्यावस्था के उपनिवेशो को इन समस्याओं का मुख्य कारण पाता है। मास्टर मुरली पांडे इसे स्पष्ट करते हैं, "जहां 'मारवाड़ियों' का आर्थिक साम्राज्य जीते जी अपने चंगुल से मुक्त न होने दे, उस समाज, स्थान या क्षेत्र में अपराध के अतिरिक्त किस कल–कारखाने अथवा रोजगार पनपने की उम्मीद की सकती है। जब एक प्रतिशत लोगो के हाथ नब्बे प्रतिशत संसाधन हों और दस में पांच प्रतिशत बड़े लोगो के हाथ में। बचे पांच प्रतिशत शेष सारी जनता के पास हो तो वहां गरीबी, भूख, अपराध तो स्वयंमयि पहाड़ की तरह सिर उठाए खड़ा होगा।"[5] डी.एस.पी. कुमार बार–बार क्षेत्र की समस्या को हल करने के लिए सामाजिक–आर्थिक कारणों की ओर इशारा करता है परन्तु मौजुदा बहरी व्यावस्था उसें चुप रहने को कहती है। इन समस्याओं के मूल को समाप्त न कर सतही तौर पर शांत या दमन करना ही अपना दायित्व समझती हैं। मीटिंग के दौरान कुमार के इन के समस्याओं की इशारा करने पर आई.जी. का कुमार को सोस्लिस्ट कह झिड़कना मौजूदा व्यवस्था के प्रयासों की गंभीरता का सच है।

वस्तुतः उपन्यास की विषय–परिधि विशाल है जिसमें लेखक ने यथार्थ के अनेक रूपों से रू–ब–रू होने का प्रयत्न किया है। मास्टर मुरली पांडे जैसे लोग इन विषम परिस्थितियों में हिम्मत और विश्वास की लौ जगाते है तो 'दुध का दुध और पानी का पानी' अखबार के सम्पादक जगदंबा प्रसाद सत्य के लिए, प्रत्येक अंजाम के लिए तैयार रहने को भी प्रेरित करते हैं। मास्टर मुरली पांडे एक बदले हुए समाज का सपना साकार करने हेतु अपने स्तर पर निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। इस अंधकार में भी वे भविष्य की सुनहरी किरण देखते हैं। उनका 'सेवा सदन' समानता पर आधारित समाज की परिकल्पना का उदाहरण है। दुध का दुध और पानी का पानी के सम्पादक जगदंबा प्रसाद अपराधियों की धमकियों की परवाह न कर, सच छापने की प्रतिबद्धता का अहसास करवाते है।

'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में लेखक केवल अराजकता, निराश और असंतोष की बात ही नहीं करता बल्कि वह उसे भी अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न करता है जो सुन्दर है, शिव है। वह चाहे प्रकृति का या मानव मन का सौन्दर्य है। वह सौन्दर्य जो विपरित एवं विषम परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने के लिए प्ररित करता है। जो बेहतर भविष्य की कामना का संदेश लेकर आता है और प्राणों में 'स्फूर्ति' का संचार करता है। हताशा और निराश के घने अंधकार में भी दीप की तरह जलकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। इसे यथार्थ से च्युत नहीं किया जा सकता है। 'जंगल जहां शुरू होता है' में यथार्थ के नाम पर तथ्यों की नीरसता से बचने के लिए जहां–तहां सौन्दर्य से साक्षात् होने का प्रयास किया है। कहीं–कहीं तो वर्णन करते हुए भाषा सामाजिक यथार्थ के खुरदरे पन और तिक्तता से दूर काव्यात्मक हो उठती है। सुन्दर बिम्बों और रूपकों की छटा पढ़ते बनती है,–"राशि–राशि शुभ्रता। इस श्वेत की भी अपनी गरिमा अपना ही अभिजात्य है। कास के वन में वह विरही सा भटक रहा था। कोई अनजानी सी प्रिया लुका–छिपी खेल रही है। यह सफेद लहर है या उसका कोरा आंचल। यह सुतली बज रही है या झांझर की झंकार।"[6] जैसे स्थल उपन्यास को यथार्थ के नाम तथ्यात्मकता भर देने वाली नीरसता से बचाने में सक्ष्म रहे हैं।

हिन्दी उपन्यासों के इतिहास में रेणु ने 'मैला–आंचल' के माध्यम से आंचलिक उपन्यासों की विधिवत् शुरूआत की। 'मैला–आंचल' की भूमिका में आंचलिकता की जो परिभाषा उन्होंने प्रस्तुत की उस पर बहुत कम उपन्यास ही खरे उतर सके है। समय के लम्बे अंतराल से कोई समग्र आंचलिक उपन्यास देखने में नहीं आया परन्तु 'जंगल जहां शुरू होता है' आंचलिकता की उस कसौटी पर खरा उतरता है। पश्चिमी चम्पारन के अंचल का जीवन साकार एवं जीवंत हो उठा है। ज्यादातर आंचलिकता भाषा विशेष के प्रभाव से मान लिए जाने के बावजूद संजीव ने इसके

हर पहलू में आंचलिकता का रंग भरने की सफल कोशिश की है। लोक–जीवन, व्यवहार, तीज–त्यौहार, नाच–गान, हास–उल्लास एवं उनकी प्रत्येक गतिविधि से पश्चिमी चम्पारन का चित्र आंखो के सामने साकार हो उठता है। लोक गीत, नाच स्वयंमयि हृदय में उतरते चलते हैः–

" 'के जइहे हाजीपुर
के जइहे पटना .....'
स्त्रियों का दूसरा दल कहता है :–
बाबा जाइहें हाजीपुर
भईया जाइहें पटना "[7]

आंचलिक चित्रण में सबसे मुख्य समस्या भाषा की आती है परन्तु लेखक ने कहीं भी अभिव्यक्ति–सुविधा के लिए शब्दों, वाक्य–सरंचना को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं किया है। शयद तभी वे अपने उद्देश्य में इतने सफल नजर आते है।

समाज में धर्म की बड़ी भूमिका है। वह एक मनोवैज्ञानिक अवलम्ब माना जाता है। अज्ञानता, अनपढ़ता और अंधविश्वासों जैसे कारणों से उसका कल्पित लोक–हितकारी रूप तिरोहित हो गया है। मिथ्याचार, बाह्याडम्बर, रूढ़िवादिता, धार्मिक अनाचार नथा अंध–विश्वास ही उसके पर्याय मान लिए हैं। धर्म के नाम पर शोषण और अत्याचार तो भारतीय समाज में आम सी बात हो गई है। कुमार देखता है कि आम आदमी के तो धर्म भी सहायक नहीं होता, उन्हें उबारता नहीं बल्कि यह तो अत्याचारी शोषकों के साथ खड़ा नजर आता है। राजनीति की धर्म में पैठ से अव्यस्था पैदा हुई है। अपराधी तत्व धर्म के सहारे राजनीति में प्रवेश कर जाते हैं। मास्टर मुरली पांडे का धर्म पर यह व्यंग्य, –"हा सर', हत्या लूट और बलात्कार से चूनर मैली हो जाए तो उसे धर्म की लांडी में भेज दो, सारा मैल धुल जाएगा।"[8] धर्म के प्रचलित कर दिए स्वरूप का यथार्थ प्रस्तुत करता है। लेखक पैनी नजर से पिछड़े जनजातीय समाज में धर्म के इस विकृत स्वरूप पर प्रकाश डालता है जहां धर्म के नाम इतने अंधविश्वास फैला दिए हैं कि लोग बीमार होने जैसी स्वाभाविक प्रक्रिया में भी धर्म का हाथ देखते हैं। बिसराम की बेटी सांप के काटने पर 'विषहरिया' के इंतजार में, डॉक्टर के अभाव में दम तोड़ देती है। पुलिस द्वारा किए बिसराम की बहू से बलात्कार को भी लोग प्रेत–छाया मानते हैं। वह असंतुलित मानसिक अवस्था से जूझने को विवश रहती है। दैवी प्रकोप से लोग डॉक्टर के पास ले जाने से डरते हैं। यह लोक में प्रचलित धर्म के आम स्वरूप है। जहां डॉक्टरी इलाज के अभाव में अंधविश्वासों के चलते रोगों, कष्टों और यहां तक कि धार्मिक–शोषण से भी जूझना पड़ रहा है। यह तथ्य लेखक ने इक्कीसवीं सदी के स्वतन्त्र भारत से ही प्रस्तुत किए हैं।

'जंगल जहां शुरू होता है' जनतन्त्र के नाम पर जंगलतन्त्र होने की आंचलिक गाथा है जिसमें लेखक ने वर्तमान समाज व्यवस्था में ऐसे रन्ध्रों से झांकने की कोशिश की है जिसमें अपराध पला, बढा और धीरे–धीरे देश के हर कोने जैसे चम्पारन से पटना तक, लखनऊ से दिल्ली तक पसर गया। अपराध की इस बढ़ती मनोवृति के निवारण हेतु लेखक गहराई तक जाता है और पाता है कि सब सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भूगौलिक तथा अव्यवस्थात्मक परिस्थितियों की देन है। जिनका निदान सतही प्रयत्न न होकर सामूहिक आंतरिक प्रयासों की आवश्यकता है। जिसमें डी.एस.पी. कुमार, मास्टर मुरली पांडे अपना सर्वस्व होम करने को तत्पर हैं। काली जैसे मेहनती एवं ईमानदार जन भी पूरी कोशिश करते हैं कि यह अपराध का जंगल अन्य में न उगने पाए।

जिस तरह जंगल पूरी तरह जंगल ही नहीं होता, वह कोमल भी होता है और सुन्दर भी। उसी तरह यह समाज अभी पूर्णतः जंगल भी नहीं हुआ कि हताश होकर किनारे बैठा जाए। उपन्यास में जगह–जगह सौन्दर्य से साक्षात् होने का प्रयत्न किया गया है। जो मानव मन की स्वाभाविक आस्था है। उसमें विश्वास की लौ जगाता है। अन्त में काली और उपन्यास के नायक डी.एस.पी. कुमार मलारी के बच्चे को मास्टर मुरली पांडे के 'सेवा सदन' में भेजने में विश्वास कर जंगल के हावी न होने देने को प्रतिबद्व नजर आते हैं।

संदर्भ

1. नगेन्द्र (सम्पादक) – हिन्दी साहित्य का इतिहास –पृष्ठ 624.
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – नए साहित्य का तर्क शास्त्र – पृष्ठ 148
3. सत्येंद (सम्पादक) – निबंध निलय – पृष्ठ 127
4. संजीव – जंगल जहां शुरू होता है – पृष्ठ 151
5. संजीव – जंगल जहां शुरू होता है – पृष्ठ 236
6. संजीव – जंगल जहां शुरू होता है – पृष्ठ 229
7. संजीव – जंगल जहां शुरू होता है – पृष्ठ 17
8. संजीव – जंगल जहां शुरू होता है – पृष्ठ 143